धर्म्म-ग्रन्थ-माल का ३ रा ग्रन्थ ।

आत्म-संयम ।

श्रीस्वामी परमानन्द कृत

"सेल्फ मास्टरी"

नामक

अङ्गरेजी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक—

धर्म्मानन्द ।

पुस्तक मिलनेका पता—

धर्म्म-ग्रन्थ-माला कार्य्यालय,

बड़ा बाजार, कलकत्ता ।

प्रथम संस्करण | १९२१ | मूल्य ।-) आने

प्रकाशक—

धर्म्मानन्द,

मजेड़ा,

नैनीताल।

पुस्तक मिलनेके अन्य पतेः—

(१) मैनेजर, अद्वैत आश्रम, पब्लिकेशन डिपार्टमेण्ट,
२८, कालेज स्ट्रीट मार्केट, कलकत्ता।

(२) हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
१२६, हैरिसन रोड, कलकत्ता।

(३) पं० रामदत्त त्रिपाठी,
संस्कृत टीचर, रानीखेत।

(४) मेसर्स के० डी० कारनाटक एण्ड ब्रादर्स,
बुक सेलर्स, नैनीताल।

(५) लाला इन्द्रलाल साह,
बुकसेलर, अलमोड़ा।

मुद्रक—
सतीशचन्द्र राय,
८।१, चीनीपट्टी, कलकत्ता।

समर्पण।

धर्म्म-ग्रन्थ-माला

के

स्थायी ग्राहकों

के

कर कमलों

में

सादर

समर्पित।

धर्म्मानन्द।

निवेदन ।
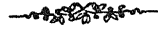
यह पुस्तक सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक, वोस्टन—अमेरिकाके वेदान्त केन्द्रके अध्यक्ष स्वामी परमानन्द की "self mastery" नामकी पुस्तकका स्वतंत्र हिन्दी अनुवाद है। स्वामी परमानन्दजीने यह पुस्तक अमेरिकामें ही लिखी और वहीं इसका प्रचार हुआ। इस अनुवादमें जो त्रुटियां रह गयी हों उनके लिये विज्ञ पाठक मुझे क्षमा करें।

स्वामी परमानन्दजीने इस हिन्दी अनुवादको प्रकाशित करनेकी आज्ञा देकर मुझको बहुत ही उपकृत किया है एतदर्थ मैं आपके निकट चिर-कृतज्ञ हूं।

मजेड़ा, नैनीताल।
जनवरी १९२१

निवेदक—
धर्म्मानन्द।

आत्म-विजय।

एक समय एक सेनापतिने बुद्धके समीप आकर कहा—"महाराज, एक शङ्का मेरे चित्तमें है और वह कर्त्तव्यके विषयमें है। मैं सैनिक हूं। मैं वादशाहसे इस लिये नियुक्त किया गया हूं कि उसके नियमोंका पालन करवाऊं और युद्ध करूं। जो भगवान प्राणी मात्रके लिये दया और प्रेमका उपदेश देते हैं, क्या वे दुष्टको दण्ड देनेकी आज्ञा देते हैं? क्या वे यह भी कहते हैं कि अपने घर, स्त्री और बालकोंके रक्षार्थ युद्ध करना पाप है? क्या वे पूर्ण आत्म—समर्पणके सिद्धान्तका उपदेश देते हैं, ताकि मैं यह सहन करलूं कि दुष्ट जो चाहे सो करे और जो अत्याचार और अन्यायसे मेरी चीजोंको ले जावे उसे ले जाने दूं? क्या भगवान यह भी कहते हैं कि सच्चे अथवा धार्मिक कार्यके लिये भी युद्ध नहीं करना चाहिये?"

इसके उत्तरमें बुद्धने कहाः "जो दण्ड योग्य है उसको अवश्य दण्ड देना चाहिये, और जो पुरस्कारके योग्य है उसको पुरस्कार देना चाहिये; किन्तु इसीके साथ साथ यह भी उपदेश है कि समस्त प्राणियोंके लिये अहिंसा, प्रेम और दयाका भी विचार रखना चाहिये। ये आज्ञाएं परस्पर विरुद्ध नहीं हैं।

मनुष्यको दयावान और प्रेम करनेवाला होना चाहिये; किन्तु मनुष्यको यह भी जानना चाहिये कि दुष्टको उसके दुष्कर्मों के लिये अवश्य दण्ड देना चाहिये। उसके ऊपर विपत्ति न्याय-कर्त्ताकी बुरी भावनासे नहीं, किन्तु उसीके दुष्कर्मों से आती है। स्वयं उसके बुरे कर्मों ने उसके लिये विपत्ति पैदा की। इस लिये उसको अपने हृदयमें घृणित विचारोंको स्थान नहीं देना चाहिये; उसको सोचना चाहिये कि यह उसीके कर्मों का फल है; वह ज्योंही इसको समझने लगेगा, उसकी आत्मा उस दण्डसे शुद्ध हो जायेगी और वह अपने भाग्यके लिये शोक नहीं करेगा, किन्तु प्रसन्न होगा।"

महात्माने फिर कहा: "वह युद्ध जिसमें मनुष्य अपने भाई को कतल करनेका प्रयत्न करता है, शोचनीय है, किन्तु वे जो शान्ति बनाये रखनेके सब प्रयत्न निष्फल होने पर, सत्यके लिये युद्ध करते हैं, दोषी नहीं हैं। वही दोषी है जो युद्धका कारण है। जीवनमें युद्ध होना चाहिये, क्योंकि समस्त जीवन एक प्रकारका युद्ध ही है। जो स्वार्थकी इच्छाओंके लिये युद्ध करता है—वह भले ही बड़ा या शक्तिशाली या धनवान या प्रख्यात हो---वह पुरस्कार योग्य नहीं हैं; किन्तु जो सत्यके लिये और धर्मके लिये युद्ध करता है उसको बड़ा पुरस्कार मिलेगा। क्योंकि उसकी पराजय भी विजय होगी।"

महात्मा बुद्धने सेनापतिको सम्बोधन करके कहा: "हे सेनापति, जो युद्धको जाता है, चाहे यह सत्यके लिये ही क्यों न हो, उसको अपने शत्रुओंसे मारे जानेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये, क्योंकि सैनिकोंके भाग्यमें यही बदा है; और यदि वह मारा गया तो इसमें शिकायतकी कोई बात नहीं। किन्तु जो विजयी होता है उसको स्मरण रखना चाहिये कि समस्त संसारके पदार्थ क्षणिक और नाशवान हैं। उसकी विजयको, यह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, जीवनका चक्र पुनः घूम कर धूलमें मिला देगा। यदि, वह नम्र है; यदि, अपने हृदयसे समस्त घृणा भावको दूर कर, वह अपने भूशायी बैरीको उठाता है और कहता है "आओ, अब हम शान्त हों और भाई बनें" वह केवल नाशवान सफलता ही प्राप्त न करेगा, किन्तु सत्य विजय प्राप्त करेगा, जिसका फल सदा रहेगा। सफलता प्राप्त किया हुआ सेनापति बड़ा है, किन्तु जिसने अपनेको जीत लिया है वह अधिक विजयी है। आत्म-विजयका सिद्धान्त मनुष्योंकी आत्माका नाश करनेके लिये नहीं, किन्तु उनकी रक्षा करनेके लिये है। जिसने आत्म विजय कर लिया हो वह उसकी अपेक्षा जो अपना दास है, जीवित रहने और विजय प्राप्त करनेके लिये अधिक योग्य है। जिसका मन देह सम्बन्धी सब प्रकारकी मायासे स्वतंत्र है, वह जीवनके संग्राममें खड़ा रहेगा और नहीं गिरेगा।

मसीहने कहा—"मनुष्यको क्या लाभ होगा यदि वह समस्त संसारका प्रभुत्व प्राप्त करले और स्वयं अपनी आत्माको खो दे ? अथवा मनुष्य अपनी आत्माके बदलेमें क्या देगा ?" अपने आभ्यन्तरके आत्म-विजयकी अपेक्षा जो मनुष्य वाह्य संसारमें विजय प्राप्त करना चाहता है वह तुच्छ विजयका इच्छुक है; और जबतक वह आभ्यन्तर राज्यको नहीं जीत लेता तबतक सारी वाह्य विजय नाशवान और अनिश्चित होंगी, क्योंकि स्वयं उसके मूर्ख कर्म किसी समय उसके नाशके कारण होंगे। चाहे संसार उसको विजयी कहे, चाहे वह स्वयं अपनेको अजेय समझे, वह आध्यात्मिक दृष्टिसे विजयी नहीं है, जबतक वह अपने आध्यात्मिक जीवनको किसी सांसारिक लाभके लिये देनेका तत्पर है। वह भले ही समस्त संसारको प्राप्त कर ले, किन्तु उसको इससे किञ्चित् लाभ न होगा। बड़े महात्माओंके समस्त उच्च आध्यात्मिक सन्देशोंमें सब उद्देश्योंसे उत्तम एक उद्देश्य है—वह यह कि प्रत्येक मनुष्यको अपनेको जागरित करना चाहिये और उसमें सबसे उत्तम श्रेयको प्राप्त करना चाहिये। उसको खड़ा होना सीखना चाहिये और स्वभावसे ऊपर उठना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य दासकी तरह सदा स्वभावकी आज्ञा पालन करता है वह क्रमशः स्वतंत्र कार्य्य करनेकी शक्तिको खो देता है, और शीघ्र अथवा देरमें जीवन उसको अवश्य सुखहीन और भारमय विदित होगा।

चित्तकी प्रवृत्ति बहुधा बाहरकी ओर होती है। इसकी सब कामनायें बाह्य वस्तुओंकी ओर झुकी रहती हैं; किन्तु यह इस विषयमें कितना ही प्राप्त करले, इसके सुखको पूर्ण करनेके लिये सदा एक न एक वस्तुकी कमी रहती है। उदाहरणके लिये, सिकन्दरका जीवन लीजिये। संसारमें कदाचित् ही कोई ऐसा विजयी पुरुष हुआ हो, फिर भी उसके चित्तमें कोई पदार्थ बिना जीता रह गया और इस लिये वह दुखी था, यद्यपि कोई बाह्य कारण ऐसा न था जिससे दुःख होता। यह संसारका अनुभव है। इस लिये क्या हमको अधिक संतुष्ट करनेवाले पदार्थको प्राप्त न करना चाहिये? शारीरिक स्वभावकी आज्ञाओंका पालन करते हुए, क्या दासत्वका जीवन व्यतीत करनेमें हमको सन्तुष्ट रहना चाहिये? अन्तमें प्रत्येक मनुष्यके चित्तमें यह प्रश्न अवश्य उठेगा; कोई इससे बच नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्यको इसका सामना करना होगा और इसका उत्तर देना होगा। यह सब धर्म्मोंका आरम्भ-स्थल है।

जैसी अवस्था इस समय हमारी है, हमारा अपने ऊपर बहुतही कम अधिकार है; यहां तक कि यह शरीर जिसको हम अपना कहते हैं हमारी आज्ञाकी अवहेलना करता है और हम अपने स्वभावके अव्यवस्थित शक्तियों द्वारा इधर उधर दौड़ते फिरते हैं। किन्तु जिसका शरीर पूर्ण रूपसे अपने अधिकारमें है

वह शारीरिक शक्तियोंसे बेचैन नहीं होता; उसको व्याकुल करने की अपेक्षा, वे उसको शान्ति और स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये सहायक होती हैं, क्योंकि उसके विकासमें वे विध्वंसक नहीं किन्तु विधायक तत्व हो जाते हैं। श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं, "वही वास्तवमें सच्चा सुखी मनुष्य है जो शरीरान्तके पूर्व ही लोभ, काम अथवा क्रोधके धक्केको सहन कर सकता है।" और इससे अपेक्षाकृत अधिक शक्तिका विकास प्रकाश होता है जब कि हम दूसरे मनुष्यको अपनी आज्ञा पालन करवानेके लिये विवश करते हैं। जो मनुष्य शासन करनेकी इच्छा करता है उसको अपने ही ऊपर शासन प्रारम्भ करना चाहिये। उसको यह सिद्ध करना चाहिये कि वह स्वयं अपने घरमें स्वामी है। अपने शरीरको उसके कर्मका मार्ग निश्चित करनेकी अपेक्षा, उसे अपने शरीरके प्रत्येक अङ्गको अपनी इच्छाके अधीन रखना चाहिये।

हम सबके अन्तरमें एक प्रकारकी शक्ति है; किन्तु जब यह शक्ति उचित रूपसे परिचालित नहीं होती अथवा इसका अप-व्यय किया जाता है, तो इससे चित्त और देहकी दशा बिगड़ जाती है। रोग बहुधा इस जीवन शक्तिके अभावसे नहीं किन्तु इसके दुरुपयोगसे उत्पन्न होते हैं। हम स्वयं अपनेको विपरीत अवस्थामें डालते हैं और क्रमशः इस विचारको पुष्ट करते हैं कि

हममें शक्ति नहीं है। किन्तु महात्मा लोग हमको सदा स्मरण कराते हैं कि यदि मनुष्य अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता है, उसको अपनी उच्च आत्माको जागरित करना चाहिये; क्योंकि वही अपना मित्र है और वही अपना बाह्य शत्रुके समान शत्रु हो सकता है। इस लिये वे हमसे कहते हैं—किसीको निरुत्साह नहीं होना चाहिये, किन्तु हर एकको ऊपर उठना चाहिये, क्योंकि और कौन हमको बचा सकता है? भगवान्का अवतार भी उस मनुष्यको बचानेमें असमर्थ है जो स्वयं बचनेकी इच्छा नहीं करता और उस शक्तिसे विहीन है जो उसके दृष्टान्त और आज्ञाका अनुसरण करनेके लिये आवश्यक है। कुछ आत्मविश्वास अथवा अपने उच्च आत्मामें विश्वास हमारे आध्यात्मिक विकासके लिये अत्यावश्यक है। प्रत्येक आत्मा स्वभाव हीसे स्वर्गीय है, क्योंकि इसके अभ्यन्तरमें जो अनन्त है उसीका वह एक अङ्ग है। क्या हमें उसको प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये? क्या हमें अपने चित्तको विपरीत अवस्थामें रहने देना चाहिये? और क्या हमें केवल उन शक्तियों पर विश्वास करना चाहिये जो केवल बाहर कार्य कर रही हैं?

कोई भी सर्वोच्च ध्येयको प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि उसको अपनी उच्च आत्माका ज्ञान प्राप्त नहीं होता। मनुष्य शरीर द्वय धारी प्रतीत होता है। एक खाने पीने सोनेवाला मनुष्य है, परिमित शारीरिक अवस्थाका मनुष्य है। इस मनुष्यमें

केवल थोड़ी शक्ति और थोड़ी योग्यता है और दूसरा अभ्यन्तरमें विराजमान है, जिसमें अधिक शक्ति और अधिक योग्यता है। यह वह मनुष्य है जिसको हम जागरित करना चाहते हैं। वाह्य जीवन, जो अपनी तुलना शारीरिक अवस्थाओंसे करता है और यह विश्वास करता है कि उसमें विजय करनेकी शक्ति नहीं है, कठिनाइयोंको वशमें करनेकी शक्ति नहीं है—उस मनुष्य का अधःपतन होगा। इसका अर्थ न तो आत्म—दुःख है न आत्म—नाश है, इसका अर्थ परिमित अवस्थाओंसे ऊपर उठना है। यह अभिप्राय नहीं है कि पार्थिव मनुष्यका नाश किया जाय; नहीं; किन्तु हममें जो निम्न विचारोंके कारण हैं, जो हमसे घृणा, क्रोध, अथवा अन्य अयोग्य कार्य कराते हैं, उनको समूल नष्ट कर देना चाहिये। यह इस तरहसे नहीं होता कि हम अपनी आँख कान, अथवा अन्य इन्द्रियोंका जिनसे हम बुरा कार्य करते हैं, नाश कर दें। हमको बुराईके कारणकी खोज करनेके लिये अपने इन्द्रिय-ज्ञानके पीछे जाना चाहिये। इन्द्रियां केवल पांच हैं, और जब ये उचित रूपसे वशमें की जाती हैं, तो आध्यात्मिक उन्नतिमें ये बड़ी सहायक होती हैं। "मनुष्य तपस्या साधनसे इन्द्रियोंकी चाहको मार सकता है, किन्तु चित्तमें इनकी इच्छा शेष रहती है; जब मनुष्य पूर्णताको प्राप्त करता है, सकल इच्छाएं दूर हो जाती हैं।"

छोटा मनुष्य, जो शोक करता है, दुःख करता है, जो सदा

यही विचार करता है कि वह असहाय नाशवान प्राणी है, उस मनुष्यको विकसित होना चाहिये और दूसरा विचार पैदा करना चाहिये जिससे वह अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। उपनिषद् एक अत्यन्त मनोरञ्जक उदाहरण देकर यह दिखलाते हैं कि शरीर और आत्मामें क्या भेद है। ये दो चिड़ियोंके समान हैं जो एक ही जीवनके वृक्षपर बैठी हुई हैं। एक तो एक शाखसे दूसरी शाखमें वृक्षके समस्त फलोंको चख कर अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिये उछलती कूदती है, दूसरी प्रभावान, और इच्छाओंसे रहित शान्ति पूर्वक बैठी रहती है। जब पहली चिड़िया इधर उधर उछल-कूद कर मीठे और खट्टे फलोंको चखकर आशा-निराशा, सुख-दुखका अनुभव करती हुई, सहसा अपनेही रंगकी दूसरी चिड़ियाको अपने स्वर्गीय स्वभावके ज्ञानसे चैतन्य और शान्ति पूर्वक बैठी देखती है। जैसेही वह इसकी ओर ध्यानपूर्वक देखती है,उसकी माया दूर हो जाती है और वह अपनी उस उच्च-आत्मासे एकताका ज्ञान प्राप्त करती है। जब तक मनुष्य अपने निम्न स्वभावको वशमें नहीं करलेता, वह उच्च दृश्यको नहीं प्राप्त कर सकता। जो उसको स्वतन्त्र करता है, इसलिये इसको प्राप्त करनेके लिये उसे धीरेधीरे प्रयत्न करना चाहिये। उसको प्रथम अपने शरीरसे सम्बन्ध रखना चाहिये, जो उसके अत्यन्त निकट है और अत्यन्त परिमितहै। उसको देखना चाहिये कि वह कहां तक अपने शरीरको अपने हाथ, पैर और समस्त इन्द्रियोंको वशमें

कर सकता है । इसके पश्चात् अपने मनको अपने अधिकारमें करनेका प्रयत्न करना चाहिये । उसको शरीर और मन दोनोंको वशमें करके, अपनी स्वतन्त्रता लाभ करनेके काममें उन्हें अपने हाथमें यन्त्र बना लेनाचाहिये ।

इस तरह हमको आत्म-विजयका कार्य प्रारम्भ करना चाहिये । हमको अपनी शरीरिक फुर्ती पर ध्यान देना चाहिये और अनावश्यक शक्तिके दुरुपयोगको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये । प्रत्येक मनुष्यके हाथ पैर और शरीरके अन्य अंग स्वयं चलते हैं और उनका यह क्रम उस समय भी जारी रहता है जब हम यह सोचते हैं कि हम लेट रहे हैं अथवा चुपचाप बैठ रहे हैं । इसको रोकना चाहिये, इससे जीवन शक्तिका अपव्यय होता है । योगी लोग इस स्वभावको नियम शील आसनके अभ्याससे वश में करते हैं, वे मांसको कम करना और शरीरको किसी विशेष दशा में स्थिर रखना सीखते हैं, यह उनको अपनी शक्तिको संचय रखने में सहायक होता है और उनको आध्यात्मिक उन्नति करनेके लिये उपयुक्त बनाता है । दूसरा कारण उत्तम शक्तियों के ह्रासका, उनका दुरुपयोग है । वृथा बोलना शक्तिके ह्रासका अत्यन्त साधारण रूप है और जिसका परिणाम धैर्यकी कमी है । शक्तिका विषम और मन माना उपयोग, जो फुर्ती और आलस्य उत्पन्न करता है, शक्तिके ह्रास का द्वितीय कारण है । संयम के अटल व्यवहारसे यह वशमें किया जा सकता है । हमको

अपने खाने, पीने, बोलने, चलने, सोने अपने कार्य के ऊपर और विश्राममें सचेत रूपसे अधिकार करना चाहिये। अन्तमें यह हमको अपनी शरीरिक शक्ति को संचय करने में सहायक होगा, और उनको पूर्ण रूप से एकत्रित करेगा, जो इस समय नियन्त्रित न होने से और उचित रूप से कार्य में लाने के अभावसे फैली हुई हैं।

द्वितीयतः हमारी मानसिक शक्तियां अपने अधीन रखी जानी चाहिये, जो इस समय अनियन्त्रित रूपसे इधर उधर दौड़ती हैं। इस कार्य में प्रथमतः हमको विचार शक्तिको उन्नत करने का प्रयत्न करना चाहिये। हमको प्रत्येक बिचार को जो हमारे मनमें उत्पन्न होता है उसका अनुसरण अन्ध विश्वाससे नहीं करना चाहिये, किन्तु हमको विचार करना चाहिये और इसको पहिचानने-का प्रयत्न करना चाहिये कि कौन वस्तु नाशवान है और कौन अचल है, कौन आवश्यक है, और कौन अनावश्यक है कौन हमारे शरीरके लिये सुखदायीहै और कौन हमारी आत्माके लिये लाभदायक है। इसके पश्चात् अपनी विचारशक्तिसे जो मार्ग निर्दिष्ट किया गया है उस पर अपना मन स्थिर रखना चाहिये। इस तरह अपने विचारपर पूर्ण रूपसे स्थिर रहनेसे एकाग्र ध्यानकी शक्ति उत्पन्न होती है, जिसके विना हम अपने निम्न स्वभावके ऊपर विजय प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते। यह कार्य्य कठिन भले ही विदित हो, किन्तु वह प्रत्येक

मनुष्य जो धैर्य्य और उत्कट अभिलाषा से प्रयत्न करता है, इसे कर सकता है। अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ से ही हमको, इस विपरीत विचारको कि हम कुछ नहीं कर सकते, जड़ से उखाड़ देना चाहिये। हमको सदाके लिये यह विचार त्याग देना चाहिये और यह विश्वास करना सीखना चाहिये कि जो असम्भव प्रतीत होता है, उसको भी हम कर सकते हैं।

अभिमानके भावसे नहीं, यह सोच कर कि हम कर सकते हैं क्योंकि हममें अलौकिक शक्ति है, परन्तु इस दृष्टिसे कि हम ईश्वरके अंग हैं, क्योंकि ईश्वर हमारे अभ्यन्तरमें वास करता है और उसके लिये सब कार्य्य संभव हैं। यही हमारा प्रवल विचार होना चाहिये जब तक कि, हम अपने छोटे शरीरको वशमें नहीं कर लेते और अपनी निम्न प्रवृत्तियों को नहीं रोकते जो हमारे उत्तम स्वभाव के सत्य दृश्य को छिपाती हैं।

मसीह, बुद्ध और अन्य प्रकाशमान आत्मा बहुधा गुरु कहलाते हैं। क्यों? इस लिये, कि उन्होंने उसको जीता है जो अवश्य जीता जाना चाहिये, जो समस्त भय, डाह, घृणा और अज्ञानताका स्रोत है। उन्होंने इनको इस तरह जीता है कि वे गुरु हैं। और अपने गुरु होने से वे ही केवल मनुष्यों के गुरु हो सकते हैं। यदि हम इस गुरुत्व की अवस्था को प्राप्त करना

चाहते हैं तो हमको अपने शरीरको अपनी इच्छाके अधीन रखना चाहिये। लड़ने वाला अथवा मोटा ताजा मनुष्य स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी आशा नहीं कर सकता, किन्तु वह मनुष्य स्वतन्त्र हो सकता है जो विचार करता है, जो अपनी इच्छाओं-को वशमें रखता है, जो शान्तिपूर्वक जीवन यापन करता है, जो क्षमाशील है, जो अपने शत्रुओंको भी प्यार करता है; क्योंकि वही बलवान मनुष्य है। प्रतिकारकी शक्ति अच्छी है, किन्तु अ-प्रतिकारकी शक्ति उससे भी बड़ी है। जबतक हममें यह भाव है कि कोई हमारे ऊपर आक्रमण कर रहा है, हमें तब तक अपने स्वार्थों की रक्षा करनी चाहिये। किन्तु समय आवेगा, जब, अपने स्वभावकी जागृतिके द्वारा यह भाव लोप हो जावेगें और हम जान लेगें कि कोई हमको छू नहीं सकता। कोई हमें मारे अथवा क्रोधसे हमारे ऊपर आखें निकाले, तो भी हमारी समझ हमको उस परसे अथवा क्रोधसे इतना ऊपर रखेगी कि बदला लेनेका विचार हममें नही उत्पन्न होगा। यह अ-प्रतिकार कहलाता है हमारा निम्न स्वभाव हम पर किसी प्रकारका दबाव नहीं डाल सकता तब कैसी ही स्थिति क्यों न हो, आत्म- विजय पूर्ण होती है।

यही वास्तवमें अत्यन्त उच्च वस्तु है जो मनुष्य पूर्ण कर सकता है, क्योंकि तब उसकी राजधानी किसी देश या मनुष्यों-में परिमित नहीं है, किन्तु जहां कहीं वह जाता है अपनी राज-

धानी साथ साथ ले जाता है। सदा वही गुरु है। कोई वाह्य-दशा उसको व्याकुल नहीं कर सकती, इसलिये वह अनन्त शान्ति और आनन्दमें रहता है। जब तक हमारे विचार-उमंग और अतृप्त-कामनाएं हमारे ऊपर अधिकार किये हुई हैं और हमको बेचैन करती हैं, हम जानते हैं कि वनमें जाने पर भी हम स्वतन्त्रता अथवा शान्तिका अनुभव कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। केवल आत्म--विजयसे ही हम उस वस्तुको प्राप्त कर सकेगें जिसको सब मनुष्य ढूंढ़ रहे हैं। इसके लिये हमको ज्ञानकी तलवार और धैर्यकी ढाल पकड़नी चाहिये, जिसमें हम अदम्य साहस-से लड़ सकें और अपने एक मात्र शत्रु, अपने ऊपर, विजय प्रप्त कर सकें।

हम किस प्रकार अपनी शक्तियोंको बना रखते हैं ।

प्राचीन भारतीय दर्शन-शास्त्रके अनुसार यह संसार दो मुख्य तत्त्वोंका बना हुआ है। एक अक्षर कहलाता है, जो सर्व-व्यापी और अनादि है, जिसका बोध इन्द्रियोंके परे है, किन्तु आधार भूत तन्त्वोंसे पृथ्वी, तेज, वायु, आकाश और अग्निसे प्रगट होता है, जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं । दूसरा जो पार्थिव-शरीरको स्थिर रखता है वह प्राण अथवा जीवन-शक्ति है, वह शक्ति जिससे मनुष्य जीवित रहता है और चलता फिरता है और जिसके बिना वह कुछ नहीं कर सकता । इन्द्रियां जो हमारे जीवनकी अत्यावश्यक अंग प्रतीत होतीं हैं, इस जीवन-शक्तिके बिना निरर्थक होंगी, इसी तरह मन और देहका प्रत्येक अंग इसके बिना निरर्थक है। इसलिये हमको यह समझनेका प्रयत्न करना चाहिये कि इस जीवन-शक्तिका क्या स्वभाव है और किस प्रकार यह वशमें की जा सकती है, क्योंकि भारतके बड़े ऋषियोंने हमको सिखलाया है कि इस शक्तिको उचित रूपसे वशमें करनेसे मनुष्य केवल शारीरिक आरोग्य ही लाभ नहीं करता, किन्तु उसकी बुद्धि भी कुशाग्र हो जाती है; वह आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी सफलता प्राप्त कर सकता है और जगज्जेता हो जाता है।

वर्तमान समयमें बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो इसका उपयोग अथवा प्राणके अस्तित्वके विषयमें जानते हैं, क्योंकि हम इसको नहीं देख सकते। प्रत्येक कार्यको स्वभावहीसे करते हुए हममेंसे अधिकांश इस संसारमें अज्ञानान्धकारमें रहते हैं। हम अपनी शक्तियोंका उपयोग, बिना यह बिचारे करते हैं कि ये क्या हैं अथवा हम इनसे क्या प्राप्त करेंगे; हममें यह भाव भी बहुत कम उत्पन्न होता है कि यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम इनको बनाये रहें और उत्तम कार्यकी ओर लगावें। हम नहीं जानते कि सच्चा आरोग्य अथवा आनन्द या प्रकाश क्या है, जब तक हम यह न सीखलें कि अपने देहकी इन अत्यावश्यक शक्तियोंका सञ्चय किस प्रकार किया जासकता है और अपनी इच्छाके अनुसार उनको किस प्रकार अपने अधीन कर सकते हैं। जैसे फैली हुई रोशनीमें बड़ी कठिनाईसे पुस्तक पढ़ी जाती है, किन्तु जब हम इसके ऊपर कोई छाया रखते हैं और इसकी किरणोंको एकत्रित करते हैं, हम बहुत ही महीन छपी हुई पुस्तक पढ़नेमें समर्थ होते हैं; इसी तरह जब हमारी समस्त शक्तियां जो शरीर, मन और इन्द्रियोंसे प्रगट होती हैं, सञ्चयकी जाती हैं, नियमितकी जाती हैं और एकत्रितकी जाती हैं, हम अपने अभ्यन्तरमें ज्ञान और आनन्दकी संभावना अनुभव करते हैं जिनके विषयमें हम इस समय सर्वथा अज्ञान हैं।

किन्तु यह किस प्रकार पूर्ण किया जाय ? कुछ लोग सहसा यह सोचेंगे कि कोई कार्य न करनेसे मनुष्य शक्ति संचय कर सकता है । यह देखा गया है कि, उस मनुष्यकी शक्ति जो कुछ नहीं करता, बढ़नेके बजाय क्षीण होती जाती है। इसके विपरीत, यदि यह सोचें कि अपनी शक्तियोंको सदा कार्यमें लगानेसे हम अधिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं तो यह भी भ्रम है; क्योंकि हम जानते हैं कि मनुष्य अधिक परिश्रम करनेसे बहुधा निर्बल हो जाता है । इसलिये इन दोनों उपायोंमेंसे कोई भी हमें अपनी शक्ति बनी रखने अथवा बढ़ानेमें सहायक नहीं होता । किन्तु एक मार्ग है जिससे ऐसा हो सकता है,—न अधिक परिश्रमसे, न क्रिया हीन होनेसे, बल्कि मध्यका मार्ग स्वीकार करनेसे। जब पार्थिव-देहसे इस मार्गका अवलम्बन किया जाता है तो इसका परिणाम उत्तम आरोग्य-लाभ है, जब मानसिक-क्षेत्रमें इसी तरह कार्य किया जाता है तब हमारी बुद्धि बढ़ती है, जब आध्यात्मिक-क्षेत्रमें इसका उपयोग किया जाता है, तब इससे अधिक ज्ञान अथवा प्रकाश उत्पन्न होता है । किन्तु शक्ति एक है। यह सदा वही जीवन-शक्ति है जिसको भारतके बुद्धिमान लोग प्राण कहते हैं—हमारे अस्तित्व, हमारे सोचने और समस्त कार्य करनेका अत्यावश्यक कारण है। यह प्रत्येक क्षेत्रमें अपनेको प्रगट करती है, किन्तु जब हम इसको अपने निम्न स्वभावसे ऊपरको उठानेमें समर्थ होते हैं तब हम उत्तम पदार्थोंको प्राप्त कराने

वाली सदा बढ़ती हुई शक्ति प्राप्त करते हैं।

विचार ही हमारे समस्त दैहिक-कार्यों को परिचालित करने वाला साधन है, इसलिये बुद्धिमान लोगोंने जीवन-शक्तिके प्रयोग-के लिये विचारको ही उत्तम माध्यम माना है। कितना कम ध्यान हम इस बडे यन्त्रकी ओर देते हैं जिसे सर्वशक्तिमान ईश्वरने हमारे हाथमें दिया है। कितनी बार हम इसका दुरुपयोग करते हैं। हमारे कर्मों का फल उत्तम कदापि नहीं हो सकता जब तक हमारे विचार नियमित नहीं किये जाते। केवल जब हम अपनी मानसिक-शक्तियोंको बिखरने नहीं देते और अपने वाह्याभ्यन्तर कार्य का, अपने शरीर और मनके बीच, माध्यम स्थापित करनेमें समर्थ होते हैं, तब हम शान्ति अथवा शक्ति प्राप्त करनेकी आशा कर सकते हैं। प्रत्येक प्राणी अत्यन्त क्षुद्र प्राणीके अन्दर भी इस महान् जीवन-शक्तिका जागरित करना संभव है। स्वभावतः ही हम, आनन्द और शक्तिके पीछे दौड़ते हैं और इनको वाह्य संसारसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं; परंतु इसका परि-णाम यह होता है कि हम सदा बाहर ही भटकते रहते हैं और यह समझनेके लिये नहीं ठहरते कि हमारे अन्दर क्या है। जब कभी हमारे मनमें कोई प्रश्न उठता है, तब हमारी प्रवृत्ति वाहर-की ओर होती है, हम किसी पुस्तकको देखते हैं अथवा किसी मनुष्यसे परामर्श करते हैं तो यही हाल रहता है, परन्तु

बुद्धिमान मनुष्य हमसे कहते हैं कि हमारे अभ्यन्तरमें ही समस्त ज्ञानकी कुंजी है। वास्तवमें कोई हमको उस बिन्दुसे बढ़कर ज्ञान नहीं दे सकता जहां हमारे अभ्यन्तर स्वभावका प्रकाश होता है। इसलिये हमको इस आभ्यन्तरिक शक्तिके कोषको ढूंढ़ना चाहिये, और हमारी खोजका जो वास्तविक लक्ष्य है—श्रेयस है, प्रथम उसका ही विचार करना अत्युत्तम है।

अधिकांश मनुष्योंके लिये यह देह ही अत्यन्त वास्तविक पदार्थ है। हम आभ्यन्तर अदृश्य आत्मा और आध्यात्मिक सूक्ष्म शक्तियोंके विषयमें वार्तालाप कर सकते हैं, परन्तु बहुत थोड़े लोग उनके अस्तित्वके विषयमें समझते अथवा विश्वास करते हैं। इसलिये हमको सबसे स्थूल यन्त्र, देहसे ही प्रारम्भ करना चाहिये। सबसे प्रथम जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या यह देह पूर्ण रूपसे हमारे अधीन है? क्या हमारे हाथ, पैर, इन्द्रिय और अन्य अंग हमारी आज्ञाका पालन करेंगे? जिस प्रकार हमारी उत्तम स्वाभाविक बुद्धि चाहती है क्या हम उसको उसी प्रकार वशमें अथवा कार्यमें लगा सकते हैं? जब हम इस विषयकी छानबीन करते हैं तब मालूम होता है कि जिसको हम देह कहते हैं उसके ऊपर अधिकारकी शक्ति हममें-से बहुत थोड़े लोगोंको है वे शक्तियां जो इसके द्वारा प्रकट होती हैं बिखर गयी हैं और इसलिये हमारे चक्षु हमको पूर्ण दृश्य नहीं दिखला सकते, हमारे कान और सारी इन्द्रियां हमको

सामान्य ज्ञान दे सकती हैं, इसीलिये हमारा अनुभव भ्रम-से रहित नहीं होता। किन्तु जब हम अपने अस्तित्वकी नींव तक जाते हैं और अपनी समस्त शक्तियोंको एकत्रित करते हैं, तब हम उनके ऊपर अधिकार प्राप्त करते हैं और उनको अपने उत्तम लाभके लिये कार्यमें लगा सकते हैं।

प्राणकी सहायता और सहयोगके बिना पदार्थ नहीं ठहर सकता; इसलिये यदि मनुष्य किसी वस्तुको चाहता है, उसको इस अत्यावश्यक सिद्धान्तको समझनेका प्रयत्न करना चाहिये, और इसको करनेके लिये सबसे प्रथम उसको समानता प्राप्त करनी चाहिये। जब तक हमारी देहमें अधिक आलस्य है, हमको सच्ची परख नहीं हो सकती। हमारे समस्त संगठनमें हमको समानताकी आवश्यकता है, क्योंकि समानताका अर्थ शक्ति है। देह भी मनके अधीन होना चाहिये। कौन अधिक शक्तिका चिन्ह है:—जब तुम एक घोड़ेको उन्मत्त भावसे आगे दौड़ने देते हो, जो तुम्हारे नाशका कारण होगा क्योंकि वह तुम्हारे वशमें नहीं है अथवा जब तुम रास दृढ़तासे पकड़े हो और इसको अपनी इच्छानुसार चलाते हो? वास्तवमें उसको वशमें रखना ही शक्तिका चिन्ह है। इसी तरह यह हमारी जरासी देह, यह यंत्र जो ईश्वरने हमको दिया है, हमें इस तरह साधना चाहिये और वशमें रखना चाहिये,

जिसमें यह हमारी आध्यात्मिक-यात्रामें वाधा डालनेके बदले जैसा कि सामान्यतः देखा जाता है, हमारा सच्चा सहायक हो।

वास्तवमें बहुत थोड़े मनुष्य अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करते हैं। अनावश्यक वार्तालापमें अथवा निरर्थक दैहिक-कार्य होने देनेसे हम कितनी शक्तिका नाश करते हैं। इससे हम केवल निर्बल होते हैं! मनुष्य यदि ईश्वर-दत्त शक्तियोंका सदुपयोग करे तो दुःख घबराहट और बेचैनीसे रिहाई पा जाय! इसका साधन धर्मका आरम्भ है। धर्म जीवनके एक विभाग-में परिमित नहीं है। इसका सम्बन्ध केवल मनुष्यके आध्या-त्मिक स्वभाव, आध्यात्मिक भावमें ही नहीं है। यह उसके जीवनकी एक एक बातसे संबंध रखता है, क्योंकि मनुष्य आध्यात्मिक भावको तब तक कैसे जगा सकता है जब तक वह अपनेको दैहिक-भारसे स्वतंत्र न करले? सब पदार्थ साथ साथ कार्य करते हैं। सबके लिये केवल एक नियम है और यह नियम समस्त क्षेत्रोंके लिये समान है। जो एक क्षेत्रके लिये अच्छा है वह सब क्षेत्रोंके लिये।

स्वार्थ-लोलुपताकी पूर्तिके लिये नहीं, प्रत्युत अधिक ज्ञान उपार्जन करनेके लिये यदि मनुष्य अपनी देहकी रक्षा करता है तो यह ठीक है, परंतु वह तब तक आरोग्य और शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि उसकी देह

उसके वशमें न हो जिसके द्वारा उसकी समस्त शक्ति प्रकट होती है। मनुष्य वास्तवमें अपनी गुप्त-शक्तियोंको प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि वह आभ्यन्तरीण स्रोतोंकी खोज न करले और अपना सम्बन्ध उनसे न जोड़ले—जब तक वह अपने आध्यात्मिक स्वभावको जागरित न करले। यदि वह अपने अधिकारके बाहरकी शक्तियों द्वारा पीछे खींचा जाय, इधर उधर घसीटा जाय तो उसको अभ्यन्तरकी ओर प्रवेश करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उसको अभ्यन्तर दृश्यकी शक्ति बढ़ानी चाहिये। अपने स्वरूपके ज्ञानके अभावसे अथवा वास्तविक आनन्दका अनुभव न पानेसे वह दीर्घ कालसे बाहरकी ओर देख रहा है; उसको अब अभ्यन्तरकी ओर दृष्टि करके देखना चाहिये कि जिसकी खोजमें वह बाहर भटक रहा था वह अन्दर है या नहीं?

उसको शान्ति धारण करनी चाहिये। अपनी विचारशक्तिका बिना उपयोग किये, मनुष्य जबतक उन्मत्त भावसे सुख प्राप्तिकी खोज करता है तबतक वह अपनेको निर्बल ही बनाता रहता है और अपने आपको दुखी करता है वही मनुष्य वास्तवमें सुख भोग करता है जो अपने समस्त कार्य्योंमें शान्ति धारण करता है। हमको अपनी प्रवृत्तियोंका न तो नाश करना चाहिये न उनका दास ही बनना चाहिये, किन्तु हमको उनपर अपना

स्वामित्व जमाना चाहिये। यही उत्तम पाठ है जो प्रत्येक मनुष्यको सीखना चाहिये। हम कितनी वार चिल्लाते हैं और चाहते हैं कि अन्य लोग हमारी आज्ञाका पालन करें, पर क्या हम स्वयं अपनी आज्ञाके पालन करनेमें सक्षम हुये हैं? फिर भी हममें शक्ति है। सारी शक्ति हमारे अभ्यन्तरमें है। वही शक्ति जिससे हम साधारण वस्तु देखनेमें समर्थ होते हैं इस तरह संचय की जा सकती है कि यह हमको दिव्य दृष्टि देगी, वह शक्ति जो हमको वाह्य स्वर सुननेमें समर्थ करती है और इस पार्थिव-संसारका ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक होती है, हमको ऊपरकी ओर ले जा सकती है और उस अनन्त विश्व-की आत्माकी तरह बात सुनने और उसका ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक हो सकती है जो मनुष्यकी आत्माको तृप्त करती है।

इस लिये हमको अपनी शक्तियोंको संचय करना चाहिये और संचय करनेका अर्थ एकत्रित करना है और एकत्रित करने-का अर्थ शक्ति है। सूतका एक अकेला धागा सहजमें तोड़ा जा सकता है, किन्तु जब बहुतसे सूत एकत्रित किये जायं तो कितनी रोककी शक्ति उनमें आ जाती है। इसी तरह हमारी समस्त छोटी विखरी हुई शक्तियां संचय की जा सकती हैं और एकीकरणकी शक्तिके द्वारा बलवान बनायी जा सकती हैं; तब हम हर एक पदार्थका सामना करनेमें समर्थ होंगे। ऐसे पक्के

विचारों द्वारा बुद्धिमान लोगोंने हमको उपदेश दिया है—हम पापी नहीं हैं, किन्तु हममेंसे प्रत्येक अपने आपको बचा सकता है; वह शक्ति स्वयं हमारे उत्तम आध्यात्मिक स्वभावमें है; और जब तक हम उसको जागृत नहीं करते, कोई भी हमको नहीं बचा सकता। क्या तुम समझते हो कि दुष्कर्मों को रोकनेके लिये केवल नियम बनानेसे ही हो जायगा? हमको शिक्षा चाहिये—और उत्तम शिक्षा जो मनुष्यको दी जा सकती है वह आत्म-विश्वासकी शिक्षा है। प्रत्येक मनुष्यमें दो प्रवृत्तियां होती हैं:—एक उसको इन्द्रियों द्वारा नीचे घसीटती है, दूसरी उसको नित्य अनित्यका ज्ञान कराती है। यदि वह उस स्वाभाविक विवेक बुद्धिको जागरित रखे और उसका अनुसरण करे तो वह अपने उद्धार कर्ताको अपने अन्दरही देख पावेगा।

जबतक हम अपने निम्न स्वभावको वशमें नहीं कर लेते, हम यह भी संदेह नहीं कर सकते कि हमारे हृदयमें उत्तम प्रकाशमान और सर्वश्रेष्ठ आनन्दकी गुप्त-शक्ति कौन सी विद्यमान है। हमको इस लिये नित्य कुछ घंटे ऐसे नियत करनेकी आदत डालनी चाहिये जब हम शारीरिक कार्य्यों से अपनी इन्द्रियोंको खींचे रहें। हम देखते हैं कि सब धर्मसंप्रदायोंमें प्रार्थना और ध्यानके लिये समय नियत रहता है। क्यों? इसलिये कि अपने जीवनके अत्यावश्यक अंगको भूल कर, जब तक हम सदा

बाहरकी ओर ही चलते हैं और अभ्यन्तरकी ओर दृष्टि नहीं करते, तब तक हमें सहारा देनेवाला अथवा पोषण करनेवाला कोई नहीं रहता। हमको सदा अपना सम्बन्ध जीवनशक्तिके भण्डारसे जोड़नेका प्रयत्न करना चाहिये, और जितना ही अधिक हम ऐसा करते हैं, उतनी ही अधिक हमारी शक्ति अटल होती है। वह मनुष्य जिसके वशमें उसकी प्राणाधार-शक्ति अथवा प्राण है वह सदा बड़े कार्य्योंको बहुत थोड़े परिश्रमसे पूरा कर सकता है। और जितनी जल्दी हम अपने तुच्छ शरीर पर विजय प्राप्त कर सकते हैं उतनी ही जल्दी हम आध्यात्मिक प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं।

ये आत्म-विजय, एकाग्रता और ध्यानके विचार केवल भारतके ही नहीं हैं। प्रत्येक धर्म्ममें जहां कहीं भी सत्य आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ है, तुम देखोगे कि वहां वह अभ्यन्तरसे, ध्यानके जीवनसे प्राप्त हुआ है। यहां तक कि पार्थिव विज्ञानवेत्ताको, एक प्रश्न हल करनेके लिये, कितनी एकाग्रता साधनी पड़ती है? एकाग्र ध्यानसे प्रकाश फैलता है और अधिक शक्ति प्राप्त होती है। शारीरिक एकाग्रता दैहिक-आरोग्य प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है, मानसिक एकाग्रता हमारी बुद्धिको तीक्ष्ण करनेके लिये आवश्यक है। और जब हम इन दोनों-

का अच्छी तरह और विचार-पूर्वक अभ्यास कर लेंगे तब एक समय आवेगा जब हम अपनी समस्त शक्तियोंको आध्यात्मिक पुनरुत्थानकी ओर लगा सकेंगे। तब वे पदार्थ जो आज हमको असम्भव प्रतीत होतेहैं सर्वथा सम्भव हो जायंगे। हमारी शंका स्वयं समाधान हो जायगी, क्योंकि जहां सूर्य्य-प्रकाश है वहां अन्धेरा नहीं रह सकता।

सारी निर्बलता और परिमितता जो हम अपनी देह और मनमें अनुभव करते हैं, केवल इस वर्तमान, प्रकट, शारीरिक अस्तित्वका विषय सोचनेसे ही नही दूर हो सकती ; इसलिये अपनी बुद्धिका प्रवाह उस स्रोतमें मिला देना होगा जो जीवन और शक्तिका आदि स्रोत है। इस स्रोतसे सम्बन्ध रहनेकी अवस्थामें हम बिना प्रतिक्रिया अनुभव किये अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें समर्थ होंगे। यही भारतीय गुरुओंका एक मात्र सर्वश्रेष्ठ रहस्य है। युगोंसे उन्होंने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य अपने कार्यको विश्राम देने वाला बना सकता है, और यदि वह अपना सम्बन्ध सबसे उत्तम पदार्थसे जोड़ ले और अपने लक्ष्यको ऊंचा रखे तो उसका कार्य उसे थकानेके बदले उसे अधिक शक्ति प्रदान करेगा। हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम एक कोनेमें पड़े रहें अथवा अपनी शक्ति संचय करने-

के लिये सब काम छोड़ दें। यदि हम अपने समस्त कार्य्यों में केवल समानता और शांतिका व्यवहार करना सीखें तो हम देह और मनका सच्चा आरोग्य-लाभ कर सकते हैं और निस्सन्देह इसीसे आध्यात्मिक-प्रकाश और स्वातन्त्र्य प्राप्त करेंगे।
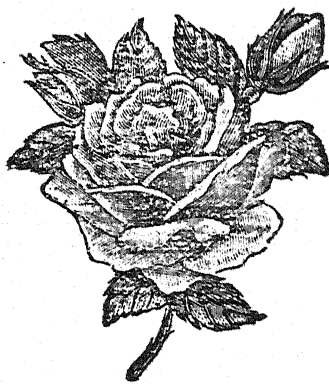
आत्म-सहायता और आत्म-समर्पण।

आत्म-सहायता और आत्म-समर्पण समस्त धर्म्म और शास्त्रोंके प्रधान उपदेश हैं । मनुष्यसे एक ओर बारम्बार कहा जाता है कि "तुम्हें अपनी आत्माके द्वारा ऊपर उठना चाहिये, कभी अपनेको नीचा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि आत्माही केवल अपना मित्र है और वही शत्रु है", दूसरी ओरसे उसको यह उपदेश दिया जाता है कि उसको अपने बल पर विश्वास नहीं करना चाहिये, किन्तु सर्वथा भगवानके भरोसे रहना चाहिये । हम किस प्रकार इन प्रत्यक्ष परस्पर विरुद्ध विचारोंको मान सकते हैं ? हम किस प्रकार एक साथ आत्म-सहायक हो सकते हैं और भगवानको भी आत्म-समर्पण कर सकते हैं ? फिर भी हम देखते हैं कि इन दोनों विचारोंका सब गुरुओंने सब पवित्र पुस्तकोंमें उपदेश दिया है, इसलिये यद्यपि ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती हैं तथापि इनमें अवश्य कुछ परस्पर सम्बन्ध होगा—मेलका कुछ आधार होगा ।

अहंकारके भावमें भिन्न भिन्न विभाग हैं । हमारा प्रथम अहंभाव उत्पत्ति और परिस्थितिसे पैदा होता है। हम किसी एकपरिवारमें एक नाम और पदसे पैदा हुए और हम अपनी

समस्त विशेषताओंको इसीसे नापते हैं, पर ज्यों ज्यों हमारी विचार-परंपरा बढ़ती है त्यों त्यों हम अपनी वाह्य-स्थिति और स्वभावसे अपनी पहिचान करना कम करने लगते हैं। तब हम जानते हैं कि भौतिक-शक्तियोंके अतिरिक्त कोई सूक्ष्म-शक्तियां भी हैं जिन पर हम निर्भर करते हैं, जब कि एक साधारण मनुष्य-की स्थितिमें "मैं कर रहा हूं" का अहंभाव ही प्रधान रहता है जो देह-बुद्धिसे उत्पन्न होता है। वह समझता है कि उसकी बाहें बलवान हैं, उसमें ताकत है, किन्तु उसका बल, जो केवल भौतिक-क्षेत्रमें ही विद्यमान है, निस्सन्देह परिमित है। जब तक उसका शरीर निरोगी है वह भलेही इस बातको न समझे और अपनी दैहिक-शक्तियोंसे जो चाहे करे पर यथा समय वह अवश्य जान लेगा कि जो शारीरिक-शक्ति शरीरसे प्रकट हुई है वह यथेष्ट नहीं है, वह बहुत दूर तक काम नहीं दे सकती। स्वभावतः यह उससे किसी बड़े और उत्तम पदार्थकी खोज कराता है जिसके बलपर वह निर्भय निर्भर रह सके।

इस तरह उन्नतिकी विविध-श्रेणियोंमें, हम अहङ्कारके उसी विचारको, केवल विविध विचार-दृष्टिसे देखते हैं। वह अहङ्कार जो शरीर और शारीरिक अवस्थाओंसे सम्बन्ध रखता है कच्चा अहङ्कार कहलाता है और इससे विपत्ति और क्लेश उत्पन्न होता है; किन्तु पक्का अहङ्कार जिसकी उत्पत्ति हमारे उत्तम स्वभावसे

है, हमको स्वतन्त्र करता है। यह वह अहङ्कार है जो भगवानमें हमारा पूर्ण आत्म-समर्पण कराता है। वास्तवमें आत्म-समर्पणका अर्थ यह नहीं है कि हम अपने समस्त कर्तव्य कर्मोंको त्याग दें। इसके विपरीत, निष्काम कर्मसे, लक्ष्यकी सदा सेवासे, हम विशुद्ध होते हैं और सकल पदार्थोंमें भगवानका हाथ देखनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु जब तक हम यह समझते हैं कि "हम कर रहे हैं" तब तक हमको इस मायासे अपना उद्धार करनेमें अपनी सहायता करनी चाहिये। जब तक हम यह अनुभव करते हैं कि समस्त उत्तरदायित्व 'हमारे' ऊपर है, तब तक हमको शक्ति भर इस अहंभावसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यह समझना निरर्थक है कि हम समस्त अहङ्कारके भावको एकदम त्याग सकते हैं और यह अनुभव कर सकते हैं कि भगवान हमारे द्वारा कार्य कर रहे हैं। हम भगवानको कार्य करते नहीं देखते। हम बोल रहे हैं, हम अपने कार्य कर रहे हैं, हमारे हाथ और पैर हैं। हममें बल है। जब तक हममें ये भाव वर्तमान रहेंगे, हम अपने ही लिये कार्य करते रहेंगे। हम इसके विपरीत नहीं कर सकते। किन्तु यदि हम अपने समस्त कार्य्योंको विचार पूर्वक करते हैं तो विचारसे यथा समय हमारे सत्य स्वभावका प्रकाश होगा और अपनी शक्तिके वास्तविक स्रोतको समझानेमें सहायक होगा। जब हम समस्त पदार्थोंके उस महा

कारणको समझते हैं, तब हम उसके अनुशासनमें आत्म-समर्पण करते हैं। इस तरह आत्म-सहायता आत्म-समर्पणकी ओर ले जाती है।

जितना अधिक हम ईश्वरको समस्त स्थानोंमें कार्य करते देखते हैं, उतनाही अधिक शीघ्र हम उसमें अपनेको उत्सर्ग करनेमें समर्थ होंगे। मूर्ख मनुष्योंके लिये आत्म-समर्पणका व्यवहार करना कठिन है, क्योंकि उन्होंने अलौकिक शक्तिके अस्तित्वका अनुभवही नहीं किया है। वे नहीं जानते कि अलौकिक शक्ति भी कोई चीज है। उन्हें पहले अपनी शक्तियोंकी परीक्षा करनी चाहिये। उन्हें अपनी समस्त शारीरिक और मानसिक शक्तियों द्वारा पहले यह सिद्ध कर लेना होगा कि, वास्तवमें कर्त्ता कौन है--वे या और कोई अलौकिक-शक्ति जिसके आधिपत्यमें वे काम कर रहे हैं। उन्हें विचारसे यह जानना चाहिये कि उनके जीवनका कौन भाग पदार्थ है और कौन भाग ईश्वर है; जब वे आत्मा और शरीर, आत्मा और पदार्थ, अमर और नश्वरके परस्पर भेदको जानने लगेंगे, तब वे उसी ओर झुकेंगे जो अमर है; क्योंकि जीवनको कौन नहीं प्यार करता? जो सबसे अधिक शक्तिशाली है उसकी ओर, स्वभावतः ही अपनी रक्षा और सहायताके लिये कौन न देखेगा?

भगवानमें पूर्ण आत्म-समर्पण करना साधारण कार्य नहीं

है । हमको प्रथम भगवानके स्वर्गीय-स्वभाव और शक्तिको कुछ समझना चाहिये; अन्यथा, जब तक हमें इसी बातका दृढ़ विश्वास नहीं है कि ईश्वरही कर्त्ता है और वही सबका प्रेरक है तब तक हमारा आत्म-समर्पण करना आत्म-समर्पण करनेका बहाना करना है और हमारे कार्यमें स्थिरता नहीं है । एक ब्राह्मणका दृष्टान्त है कि उसने एक समय एक गायकी हत्याकी । ब्राह्मणके लिये हत्या करना, जिसका जीवन ईश्वरको समर्पण किया हुआ और अहिंसा और समस्त प्राणियोंके प्रति प्रेमका समझा जाता है, बड़ाही भयानक दोष है। जब ब्राह्मणके ऊपर गायकी हत्याका दोष लगाया गया, उसने कहा, "मैंने हत्या नहीं की ; इसके लिये इन्द्र उत्तरदायी है, मैं नहीं।" उसकी भूल दिखानेके लिये, ईश्वर-ने, मनुष्य रुप धारण करके, उसके उद्यानमें प्रवेश किया और उद्यानके सौन्दर्य और उसके मालीकी बुद्धिमानीकी प्रशंसा करने लगा। ब्राह्मणने अभिमान पूर्वक उत्तर दिया, "नहीं, प्रत्येक कार्य स्वयं मैंनेही किया है; आइये और मैं आपको अपने उद्यानके समस्त भाग दिखलाऊंगा।" ब्राह्मण आगे चलकर कहने लगा, "देखिये मैंने इन वृक्षोंको लगाया है, मैंने यह मार्ग बनाये हैं, यह पुष्प-वाटिका लगायी है।" प्रत्येक दूसरा शब्द 'मैं' था। कुछ समय तक ईश्वरने ध्यानपूर्वक सुना और फिर कहा, "ये समस्त कार्य तुमने कि येहैं; केवल गायकी हत्या करनेके लिये वेचारा ईश्वर उत्तर दायी है।"

प्रायः बहुधा हमारी दशा ऐसीही होती है। हम कहते हैं, "तेरी इच्छा, मेरी नहीं;" परन्तु हम अपने हृदयके हृदयमें यही समझते हैं कि हमही वास्तवमें कर्त्ता हैं। यदि एक कठोर शब्द कहा जाता है तो हमारे हृदयमें चोट लगती है और हम क्रोधित हो जाते हैं; अथवा यदि हमारी प्रशंसा होती है, हम फूले नहीं समाते। परन्तु यह दशा उसकी नहीं होती जो जानता है कि प्रत्येक कार्य ईश्वरकी इच्छाके अनुसार होता है। वह सुख-दुःख और निंदा स्तुतिमें समान रहता है। वह समान चित्तसे सब सहन करता है। उसे क्रोध नहीं आता अवस्था विपरीत होने पर वह अपने जीवनको दुखी नहीं कहता; क्योंकि वह जानता है कि ईश्वर कर्त्ता है और जो कुछ उसके पाससे आता है अवश्य आशीर्वाद स्वरुप है। भगवानमें आत्मोत्सर्ग करना मनुष्यको इतना शक्तिशाली, इतना निर्भय बना देता है कि जीवनमें कोई भी पदार्थ अथवा मृत्यु भी उसकी शान्ति भङ्ग नहीं कर सकती।

भगवानपर ऐसा विश्वास होना आत्म-विश्वासका मूल है। ऐसे विश्वाससे मनुष्य असम्भवसे असम्भव कार्य भी कर सकता है। मसीहने कहा है, "यदि तुममें राईके दानेके बराबर भी विश्वास है तो तुम इस पहाड़से कहो कि इस स्थानसे उस स्थानको हट जा, वह हट जायगा; और तुम्हारे लिये कोई कार्य

असम्भव नहीं होगा।" विश्वासकी शक्ति ऐसी विशाल है। जब हमने भगवानको अपने अन्दर पा लिया तब हमको कौन हिला सकता है? जब तक हम नाम, रूप और शारीरिक बातोंसे अपनी पहचान करते हैं, हमारी शक्ति भी परिमित रहती है और इसलिये हमारी सत्यकी दृष्टि भी ढकी रहती है, क्योंकि प्रकाश और अंधेरा साथ साथ नहीं रह सकते। "मैं" का भाव महान अंधकार है जो आत्माको ढक देता है। बुद्धिमान लोगोंने सत्य कहा है कि अहङ्कारकी अपेक्षा बड़ा और बलवान बैरी कोई नहीं है।

जब तक हम अपनेको इस अहङ्कार अथवा निम्न स्वभाव-से पहिचानते हैं, हम माया अथवा अज्ञानताके ऊपर कभी नहीं चढ़ सकते। इस लिये हमको निम्न स्वभावको उत्तम स्वभावमें समर्पण करके वशमें करना चाहिये। हमको उत्तम स्वभावके, अथवा अन्तरात्माके वशमें, रहना चाहिये। सच्चा भक्त कहता है, "मैं नहीं, मैं नहीं, किन्तु तू है। मैं कुछ नहीं हूं। मैं क्या कर सकता हूं? जितना शीघ्र मैं अपनेको तेरी इच्छा पर उत्सर्ग कर सकूं उतना कल्याण है।" ज्ञानी कहता है, "मैं यह शरीर नहीं हूं। मैं इन्द्रिय नहीं हूं। मैं इन पदार्थोंमें से कोई नहीं हूं। मैं वह हूं। मैं वह हूं जो निराकार, अमर, अनादि, परिवर्तन-रहित है।" एक द्वैत दृष्टि है, दूसरी अद्वैत; किन्तु दोनों एक ही लक्ष्यकी ओर ले जाती हैं।

मसीहने दोनों भावोंको अपने आध्यात्मिक ज्ञानकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें प्रकट किया है। जब उसने कहाः—"मेरी नहीं किन्तु तेरी इच्छा पूर्ण हो," "तू मेरा पिता है, मेरा स्वामी है, मैं तेरा पुत्र हूं; तेरा सेवक हूं", उसकी अवस्था भक्तके समान थी। जब, उसने कहा, "मैं और मेरे पिता एक ही हैं", उसने ज्ञान-मार्गके अवलम्बीकी तरह अद्वैत भाव प्रकाश किया। एक दशामें हम भगवानको भिन्न पदार्थ समझते हैं, वह उत्पन्न करनेवाला और रक्षा करने वाला है, सत्य पिता है, अपने निम्न-स्वभावको परिमित जान कर, हम अपनेको उसमें समर्पण करते हैं। दूसरी दशामें हम निम्न स्वभावके क्षेत्रसे ऊपर उठते हैं और भगवानके साथ समानता अनुभव करते हैं। दोनों दशाओंमें, हम सत्यको बाह्याभ्यन्तर कहीं क्यों न देखें, हम मनुष्यके अपूर्ण-दशासे ऊपर उठते हैं।

जब हमको पूर्ण विश्वास हो जाता है कि ईश्वर ही केवल कर्त्ता है, राह बताने वाला है, समस्त शक्ति जो हम में है उसीसे आती है और हम केवल उसके हाथमें यन्त्र स्वरुप हैं तब हम इसी जन्ममें स्वातन्त्र्य प्राप्त करते हैं और कोई पदार्थ हमको नहीं गिरा सकता। किन्तु अहंभाव भ्रमात्मक है। यह कहा जाता है कि देवता भी इससे छले गये और इसके वशमें आ गये। एक उपनिषत्‌में यह कथा है कि एक समय देवताओंने

एक बड़ी विजय प्राप्त की, और अभिमानमें आकर कहा, "यह विजय हमारी है, हमने स्वयं इसको प्राप्त किया है;" सब अपनी शक्तिका अभिमान करने लगे। उसी क्षण उन्होंने एक आश्चर्यजनक-मूर्ति देखी। ब्रह्मा, सब पदार्थों के कर्त्ता, उनके समक्ष उपस्थित हुए; किन्तु उन्होंने नहीं जाना कि वे किसको देख रहे हैं, इसलिये वे एक एक करके उसको पहिचाननेके लिये भेजे गये। प्रथम, अग्निदेव उस मूर्ति के सम्मुख उपस्थित हुए भगवानने पूछा कि, तुममें कौनसी शक्ति है? अग्निदेवने उत्तर दिया, "मुझमें समस्त विश्वको भस्म करनेकी शक्ति है"। भगवानने कहा, "तब इस घासके तिनकेको जलाओ।" किन्तु वे न जला सके। तब वायुदेव आये। ब्रह्माने पूछा, "तुममें कौनसी शक्ति है?" "मैं इस समस्त भू-मंडल को उड़ा सकता हूं।" "तब इस घासके तिनकेको उड़ाओ जो मैं तुम्हारे सम्मुख रखता हूं।" उन्होंने प्रयत्न किया, किन्तु सफल मनोरथ नहीं हुए। अन्तमें, देवताओंके राजा इन्द्र गये; और ज्योंही वे समीप आये, उन्होंने जान लिया कि यह आश्चर्यजनक मूर्ति ब्रह्माके अतिरिक्त और कोई नहीं है, जो समस्त प्रताप और प्रशंसाके पात्र हैं, उन्हींके प्रतापसे यह विजय हमको प्राप्त हुई।

भगवानमें आत्म-समर्पण करना ज्ञानका महा चिन्ह है। मूर्ख मनुष्य, जो इस अहङ्कारसे लिपटा रहता है, सदा दुखी रहेगा।

सकल पदार्थों के कर्त्ता समझ कर, जो भगवानमें आत्म-समर्पण करता है, केवल वही शान्ति प्राप्त करता है। अपने जीवन और मर्म्मों द्वारा वह भगवानका आशीर्वाद प्राप्त करता है और दूसरों-के लिये आशीर्वाद स्वरुप होता है, क्योंकि वह फिर स्वार्थ-परता अथवा अज्ञानतासे कार्य नहीं करता, किन्तु वह भगवानके हाथका प्रत्यक्ष यन्त्र हो जाता है और उसके समस्त कार्य स्वर्गीय प्रेम और ज्ञानसे भर जाते हैं।
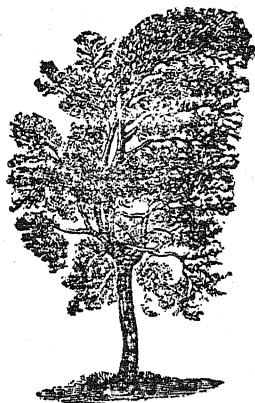
समालोचना ।
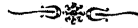
PRABUDDHA BHARAT MAYAVATI.

JANUARY 1921.

(१) Bhakti-ka-Marg.—A translation into Hindi of the "Path of Devotion" by Swami Parama Nanda. The original book contains discourses on the religion of love and the means of acquiring it in life. The translation is well executed and retains much of the spirit of theoriginal. We recommend it to the Hindi reading public

---

THE SERVANT.

CALCUTTA, FEBRUARY 18TH, 1921.

Bhakti-ka-Marg.—The book is the Hindi translation of the 'Path of Devotion' by Swami Parmanand. The chief characteristic of the book lies in its nice and consistent Hindi rendering and one can atonce catch up the spirit of the original book. Swami Parmanand, a Ramkrishna Mission Sannyasi working in America, has nicely dealt with the path of devotion in all its aspects and the book under review, we trust, will help the Hindi reading public to understand the complex niceties of the path of devotion as outlined by Swami Parmanand. The book is written in a charming style and we hope it will be much appreciated by the reading public.

"शक्ति", अलमोड़ा, ५ अक्तूबर १९२० ।

भक्तिका-मार्ग—रामकृष्ण मठके प्रसिद्ध शिष्य स्वामी परमानन्दजीके अंग्रेजी पुस्तक 'पाथ आफ डिवोशन'का यह स्वतन्त्र हिन्दी अनुवाद है । पुस्तकके आरम्भमें स्वामी राघवानन्दजीने छोटीसी पर ओजस्विनी भूमिका लिखी है। पुस्तक अध्यात्मवाद लिये हुये है। किस प्रकार मनुष्य पवित्रता, स्थिरता, निर्भयताका अवलम्बन करता हुआ आत्म-समर्पण द्वारा उस अनन्त भक्तिको प्राप्त करता है जिसे जानकर फिर कुछ जाननेकी इच्छा नहीं होती है, इसका दिग्दर्शन विस्तृत रूपसे किया गया है। मातृभक्तिका उपदेश भी मनन करने योग्य है। अनुवादकी भाषा भी अच्छी व मर्मस्पर्शी है । छपाई वगैरह सब सुन्दर है ।

"हिन्दी बङ्गवासी," कलकत्ता, १७ जनवरी १९२१ ।

अंग्रेजीमें लिखी 'दी पाथ आफ डिवोशन'का यह हिन्दी अनुवाद है । यह पुस्तक प्रसिद्ध वेदान्त-प्रचारक स्वामी विवेकानन्द महाराजके एक शिष्यकी लिखी है । इस पुस्तकमें भक्ति, पवित्रता, स्थिरता, निर्भयता, आत्म-समर्पण आदि विषयोंका अच्छी तरह प्रतिपादन किया गया है, कि किस उपाय और भावनासे भक्ति-रंगमें रञ्जित होकर चरित्रका गठन हो सकता है । पुस्तककी छपाई, सफाई तथा कागज बहुतही अच्छा है ।

"सरस्वती" प्रयाग, मार्च १९२१

भक्तिका मार्ग—स्वामी परमानन्दने 'दी पाथ आफ डिव्होशन' नामकी एक छोटी पुस्तक अंग्रेजीमें लिखी है। आपने अमरीका-में ही उसको प्रकाशित किया और वहीं उसका प्रचार भी हुआ। उसी पुस्तकका यह हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक बहुत अच्छी है। स्वामीजीने भक्तिका मार्ग बहुतही अच्छे ढंगसे समझाया है। अनुवादकी भाषा मनोहर और सरल है ।

"प्रभा" कानपुर, मई १९२१।

भक्तिका मार्ग—यह पुस्तक श्रीस्वामी परमानन्द प्रणीत The path of devotion (दी पाथ आफ डिवोशन) का हिन्दी अनुवाद है। स्वामी परमानन्द श्रीरामकृष्ण मिशनके एक सुप्रसिद्ध कार्य्यकर्ता हैं। उन्होंने इस पुस्तकमें वेदान्त-विषयका प्रतिपादन किया है । इसे पढ़ कर पाठकोंकी भक्ति-वृत्ति जागृत होती है । इसकी भूमिकासे विदित होता है कि मूल ग्रन्थके अमेरिकामें पांच संस्करण निकल चुके हैं। छपाई साफ । अनुवाद स्वतन्त्र है। भाषा भी ओजस्विनी है। पुस्तक संग्रहके योग्य है ।

दैनिक 'भारतमित्र' कलकत्ता ता० १२ जुलाई १९२१।

(२) जीवन और मृत्युका प्रश्न। मूल पुस्तक "दी प्रोब्लेम आफ लाइफ एण्ड डेथ" अंग्रेजीमें है जो अमेरिका प्रवासी श्रीस्वामी

परमानन्दकी रचना है। इसका यह हिन्दी अनुवाद है। जीवन, मरण, प्रारब्ध, पुनर्जन्म, मृतोत्थान आदि विषयोंकी स्नेह-स्निग्ध चर्चा है। अनुवाद भी हार्दिक है और पुस्तकका विषय मनन करने योग्य है।

'कलकत्ता-समाचार' कलकत्ता। ता० १६ जुलाई १९२१

"जीवन और मृत्युका प्रश्न" यह पुस्तक अमेरिकाके रामकृष्ण मिशन वेदान्त केन्द्रके अध्यक्ष स्वामी परमानन्दके "The problem of life and death" नामक पुस्तकका अनुवाद है। इसमें बड़े अच्छे ढंगसे सुन्दर और सरल भाषामें भक्ति-मार्गका मर्म समझाया गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

धर्म्म-ग्रन्थ-माला ।

१ इस सीरीजके निकालनेका मुख्य उद्देश्य साहित्य सेवा है।

२ आरम्भमें केवल ॥) आठ आना प्रवेश फी भेजकर अपना नाम स्थायी-ग्राहकोंमें दर्ज करालेनेसे सीरीजसे निकलनेवाले एवं निकले हुए सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जायंगे।

३ प्रवेश फी वापस नहीं दी जायगी।

४ इस सीरीजसे हर प्रकारके उत्तमोत्तम ग्रन्थ धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, शिक्षाप्रद उपन्यास, गल्प, प्रहसन, नाटक इत्यादि २ देशकालके अनुसार प्रकाशित किये जायंगे।

५ पुस्तक निकलनेकी सूचना स्थायी-ग्राहकोंको १० दिन पूर्व दी जायगी, तद्नपश्चात् पुस्तक उनकी सेवामें पौनी कीमतमें वी० पी० द्वारा भेजी जायगी।

६ यद्यपि जन साधारणके लिये प्रवेश फी ॥) आठ आना मात्र है, किन्तु राजा, रईस और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे उनके सम्मानार्थ प्रवेश फी अधिक होगी। उनके लिये प्रवेश फी क्या होगी यह उन्हींकी रुचिपर निर्भर है।

७ पुस्तकें ग्राह्य और उपादेय होंगी।

अवतक इस सीरीजसे निम्न लिखित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनका हिन्दी-संसारमें बड़ा आदर हुआ है।

१ भक्तिका मार्ग—मानव-चरित्रको उन्नत बनानेवाला अत्युत्तम आध्यात्मिक पुस्तक। पुस्तककी उपयोगिताके विषयमें केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अमेरिका देशमें मूल पुस्तकके अल्प समयमें पांच संस्करण निकल गये हैं और इसका अनुवाद फ्रेञ्च भाषामें भी हो गया है। मूल्य ॥) डाक व्यय पृथक।

२ जीवन और मृत्युका प्रश्न—भावपूर्ण और शिक्षाप्रद आध्यात्मिक पुस्तक है। पुस्तक मनन एवं संग्रह करने योग्य है। मूल्य ।-) डाक व्यय पृथक।